व्यवहार में नौ पदार्थों का ज्ञान आवश्यक है

छह दव्वइँ जे जिण-कहिय, णव पयत्थ जे तत्त।
विवहारेण य उत्तिया, ते जाणियहि पयत्त॥३५॥

जिन भाषित षट् द्रव्य जो, पदार्थ नव अरु तत्त्व।
कहा इसे व्यवहार से, जानों करि प्रयत्न॥ ३५॥

अन्वयार्थ – (जिण जे छहदव्वह णव पयत्थ जे तत्त कहिया) जिनेन्द्र ने जो छह द्रव्य, नौ पदार्थ और सात तत्त्व कहे हैं **(ववहारे जिणउत्तिया)** वे सब व्यवहारनय से कहे हैं **(पयत्त ते जाणियहि)** प्रयत्न करके उनको जानना योग्य है।

वीर संवत २४९२, आषाढ़ शुक्ल ३, मंगलवार, दिनाङ्क २१-०६-१९६६
गाथा ३५ से ३८ प्रवचन नं. १४

यह योगसार है। योगसार अर्थात् आत्मा के मोक्ष का उपाय। उसमें सार क्या है? – यह बताते हैं। समझ में आया? उसमें ३४ गाथा हो गयी। अब, ३५ वीं।

छह दव्वइँ जे जिण-कहिय, णव पयत्थ जे तत्त।
विवहारेण य उत्तिया, ते जाणियहि पयत्त॥३५॥

क्या कहते हैं? **जिनेन्द्रदेव ने..... जिण कहिआ** – ऐसा है न? जिनेन्द्र परमेश्वर ने छह द्रव्य, नौ पदार्थ और सात तत्त्व कहे हैं। सर्वज्ञ परमेश्वर, जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान, आत्मा में प्रकाशमान हुआ है – ऐसे भगवान ने छह द्रव्य कहे हैं, वे छह वस्तुएँ; उनके नव तत्त्व-पदार्थ और सात तत्त्व, उन्हें व्यवहार से **जिण उत्तिया** – ऐसा शब्द पड़ा है। भगवान ने उन्हें व्यवहार से कहा है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु – अर्थात् नहीं है और कहा है, ऐसा ?

उत्तर – नहीं, और कहा – ऐसा नहीं, वही कहते हैं। व्यवहार से कहा है अर्थात् कि आत्मा से भिन्न हैं और भेदरूप तत्त्व हैं; इस कारण उन्हें व्यवहार से नव तत्त्व आदि कहा गया है। आत्मा निश्चय से तो अभेद अखण्ड आनन्द की मूर्ति है। उसका आश्रय करना और उसकी दृष्टि करना, वह सम्यग्दर्शन है, वह निश्चय है परन्तु निश्चय में जिसका निषेध होता है, वह चीज़ क्या ? समझ में आया ?

निश्चय आत्मा, निश्चय से तो आत्मा अनन्त शुद्ध गुण का पिण्ड एकरूप वस्तु है, वह सत्य और वह निश्चय है कि जिस आत्मा का अन्तर आश्रय करने से आत्मा को सम्यग्दर्शन और आत्मा का साक्षात्कार होता है, वह तो वस्तु निश्चय (हुई), परन्तु जब निश्चय ऐसा है, तब दूसरा व्यवहार है या नहीं ? ऐसा। फिर वह भगवान ने कहा। कहा न ? **ववहारे जिण उत्तिया** और **जिण कहिआ** छह द्रव्य। ये छह द्रव्य – छह प्रकार के पदार्थ हैं। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल, अनन्त परमाणु; पुद्गल और अनन्त जीव, ऐसे एक स्वरूप के निश्चय की अपेक्षा से ये सब छह द्रव्य भेदरूप अथवा अनेकरूप हुए, इसलिए उन्हें व्यवहार कहा गया है। समझ में आया ? यह व्यवहार है। **जिण उत्तिया** वीतराग ने कहा है। यह छह द्रव्य, नौ पदार्थ या नव तत्त्व या सात तत्त्व इनमें से छाँटकर निकालना है तो एक। कौन ? और किसमें से पृथक् पड़ता है ? अजीव, आस्रव, बन्ध से पृथक् पड़ता है और संवर, निर्जरा और मोक्ष तो भेदरूप दशा है। अभेदरूप त्रिकाल कौन ? समझ में आया ? समझ में नहीं आता ?

मुमुक्षु – स्पष्ट समझ में आये – ऐसा है।

उत्तर – ऐसा न ? यह कहते (हैं)। स्पष्ट समझ में आये ऐसा है।

आत्मा निश्चय से तो एकरूप अभेद स्वभाव आत्मा का, वह उसका सत्व और निश्चय.... परन्तु उस निश्चय के अभेद में आना, तब कौन-सा व्यवहार निषेध में गया ? व्यवहार का अभाव हुआ, वह व्यवहार कोई चीज है या नहीं ? तो कहा कि **ववहारे जिण उत्तिया** वीतराग ने छह द्रव्य, नौ तत्त्व, सात तत्त्व पदार्थ आदि भगवान ने कहे हैं, वे व्यवहार से कहे हैं। व्यवहार से कहे का अर्थ कि भेदरूप; एकरूप में से भेदरूप और

एकरूप में से अन्यरूप – ऐसे को भगवान ने व्यवहार कहा है। समझ में आया? वह व्यवहार नहीं जाने, उसे निश्चय नहीं होता और निश्चय है, वह अभेदस्वरूप है, तब भेद क्या है? और चैतन्य से अन्य क्या है? कहो, समझ में आया या नहीं इसमें?

भगवान अभेद ज्ञायकमूर्ति, वह निश्चय, वह सत्य – उसकी दृष्टि करना, वह सम्यग्दर्शन है; तब इससे अन्य अजीव आदि हैं, पुद्गल आदि हैं, वे अन्य हैं, इससे अन्य है। यह अलग, वह अलग – उसका ज्ञान तो करना पड़ेगा न? और आत्मा शुद्ध अभेद है, तब उसमें पुण्य-पाप का आस्रवभाव, अटकना बन्धभाव – यह आत्मा से विपरीतरूप भाव अन्य है तो इसका भी ज्ञान करना चाहिए और आत्मा – अभेदस्वरूप की दृष्टि करने से उसमें संवर, निर्जरा और मोक्ष भी एक समय की पर्याय – भेद है। वह भेद **जिण उत्तिया** (अर्थात्) उन्हें वीतराग ने कहा है और वे हैं। समझ में आया? छह द्रव्य....

मुमुक्षु – प्रयत्नपूर्वक जाने।

उत्तर – प्रयत्नपूर्वक न जाने? व्यवहार को प्रयत्नपूर्वक नहीं जानना? प्रयत्नपूर्वक आदर नहीं करना। यहाँ जानने की बात है या नहीं?

मुमुक्षु – इस व्यवहार को निश्चय नहीं होता – ऐसा तो कहकर कहा।

उत्तर – व्यवहार यह है, तब निश्चय हुआ, ऐसा। निश्चय हुआ अर्थात्? अभेदपना है, उसमें यह नहीं। तब इसका ज्ञान चाहिए न? जिससे भिन्न पड़ता हूँ कि अंशरूप मैं नहीं, वह अंशरूप और भिन्न है, वह चीज क्या? समझ में आया? इसलिए दो शब्द प्रयोग किये। छह द्रव्य आदि, नव पदार्थ, सात तत्त्व जिन(देव) ने कहे हैं, परन्तु यह जिन (देव) ने व्यवहार कहा है, पुनः ऐसा ले लिया। समझ में आया? यह निश्चय नहीं है।

हाँ, **जिण उत्तिया** ऐसा कहा, व्यवहार कहा। समझ में आया?

ते जाणियह पयत्त निश्चय में.... वीतराग ने निश्चय में ऐसा कहा (कि) तेरा एकरूप भगवान आत्मा सच्चिदानन्द स्वरूप, अनन्त-अनन्त गुण का एकरूप-ऐसा आत्मा वह निश्चय है – ऐसा जिन(देव) ने कहा है। तब यह व्यवहार जिन ने कहा, वह कैसा? समझ में आया? यह छह द्रव्य भलीभाँति जानना चाहिए, क्योंकि ज्ञान की –

आत्मा की ज्ञानदशा की एक पर्याय में यह छह द्रव्य जानने की ताकत है, वह व्यवहार है, वह जानना व्यवहार है और स्व को जानना वह निश्चय है। स्व को जानना, निश्चय तो व्यवहार है या नहीं? और उसका ज्ञान होना चाहिए या नहीं? प्रयत्नपूर्वक होना चाहिए या नहीं? ऐसा कहते हैं।

उन्हें प्रयत्न करके जानना योग्य है। जो छह द्रव्य – धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल – चार अरूपी (द्रव्य); पुद्गलरूपी, दूसरे अनन्त जीव भी अरूपी – इन सब छह द्रव्यों को जैसे हैं वैसे, इनके द्रव्य अर्थात् वस्तु इनकी शक्ति, इनकी अवस्थाएँ जैसे हैं वैसे व्यवहार से जानना चाहिए। जब छह द्रव्य कहे तब उसका अर्थ यह हुआ कि छहों द्रव्य स्वतन्त्र भिन्न-भिन्न हैं। यदि छह द्रव्यों की पर्याय स्वतन्त्र अपने से होती है – ऐसा जो जानना, अभी उसका नाम तो व्यवहार ज्ञान है, व्यवहार है। समझ में आया? छह द्रव्य है – ऐसा कहने से वे स्वयं द्रव्य, गुण और पर्याय से है। छह वस्तुएँ हैं, वे अपनी वस्तु से है, शक्ति से है, अवस्था से है; उसमें किसी की अवस्था से कोई (होवे) तो वे छह द्रव्य नहीं रहे। समझ में आया?

जाणियह कहा न? **जाणियह पयत्त** वस्तु नहीं? व्यवहार का विषय नहीं? विषय न हो तो फिर निश्चय नहीं। किसने निषेध किया? इसमें किसका अभाव हुआ? या अन्य का अभाव हुआ? आस्रव और पुण्य-पाप के बन्ध का अभाव हुआ। संवर, निर्जरा, मोक्ष की अभेद पर्याय में उनका अभाव हुआ, अभेद में वह भेद है नहीं। एक अन्य, एक विपरीत और एक भेद... समझ में आया?

मुमुक्षु – प्रयत्नपूर्वक जानना योग्य है।

उत्तर – जानना; जानना अर्थात् स्वयं स्वतः ज्ञान हो जायेंगे – ऐसा नहीं, यह कहते हैं। जानना कि छह द्रव्य है, शुभविकल्प से यह जानने का प्रयत्न करना। शुभविकल्प है न यहाँ पर? समझ में आया? हैं? सुनना, गुरु उपदेश से सुनना, शास्त्र पढ़ना... समझ में आया? यहाँ बात तो दूसरी कहनी है कि जगत् में छह वस्तु है, इतनी जो अभी व्यवहार से न जाने तब तो उसका आत्मा निश्चय, अभेद, एकाकार ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड है, (उसे) कैसे जानेगा? एक पर्याय में छह द्रव्य जानने की ताकत, एक समय की पर्याय

में छह द्रव्य को (जानने की) ताकत... इतना भी जो व्यवहार, यहाँ पर्याय है वह भेद है, छह द्रव्य है, वे अन्य हैं परन्तु इतना व्यवहाररूप से जो न जाने, वह उसका निषेध करके अभेद में किस प्रकार आयेगा ? समझ में आया ? अन्य से पृथक् और एक समय जितना नहीं.... व्यवहार की बातें आवे, वहाँ कठिन पड़ती है। दूसरे निश्चय में ठीक (लगे) और एक गड़बड़ करके निकाल देता है.... परन्तु इसे जानना चाहिए।

छह द्रव्य को **जिण कहिआ** – वीतरागदेव द्वारा कथित है और वे वीतरागदेव कहते हैं कि हमने **ववहारे जिण उत्तिया** नौ के भेदरूप कथन वह व्यवहार है – भगवान ऐसा कहते हैं। वे नौ हैं, इसलिए निश्चय है – ऐसा नहीं है। समझ में आया ? नौ में जीव आया... जीव कैसा है ? अजीव कैसा है ? ऐसा नौ का ज्ञान... दया, दान, व्रतादि के परिणाम पुण्य हैं; हिंसा, झूठ आदि के परिणाम पाप हैं, इन दो को आश्रव कहते हैं; वस्तु इनमें अटके, इसलिए भावबन्ध कहते हैं। आत्मा में आस्रव और बन्ध से निकलकर स्वभाव की ओर जाने से जो शुद्ध संवर-निर्जरा – शुद्धि की उत्पत्ति, शुद्धि की वृद्धि और शुद्धि की पूर्णता (होती है), वे सभी पर्यायें नवतत्त्व में व्यवहाररूप से आती हैं। भगवान ने उन्हें व्यवहार कहा है। समझ में आया ? लोगों को सूक्ष्म पड़ता है। यह तो व्यवहार आया तो भी सूक्ष्म पड़ता है। लो!

व्यवहारनय से कहे हैं। ये नौ हैं, वे निश्चय से नहीं; निश्चय से अर्थात् नहीं ऐसा नहीं परन्तु है, परन्तु वे भेदरूप हैं, अन्यरूप हैं, इसलिए उन्हें भगवान ने व्यवहार कहा है। समझ में आया ? इन्होंने तो बहुत विस्तार किया है। **पर का आश्रय लेकर आत्मा का कथन व्यवहारनय से ही किया जाता है।** है इसमें.... समझे न ?

मुमुक्षु – व्यवहार वस्तु नहीं।

उत्तर – वस्तु नहीं – ऐसा होता है ? व्यवहार नहीं ? व्यवहारनय तो जाननेवाला है, तो उसका विषय नहीं ?

भगवान आत्मा एक समय में अभेद पूर्णस्वरूप, वह अपना निजतत्त्व अखण्ड है, उसे यहाँ निश्चय कहते हैं, तब निश्चय की अपेक्षा से उसकी निर्मल अवस्थाओं के भेद पड़ें, शुद्धि, वृद्धि, और पूर्ण, वह भी व्यवहार है। **जिण उत्तिया ववहार** वीतराग ने उसे

व्यवहार कहा है। आहा...हा...! समझ में आया? संवर कैसे होता है? शुद्धि अंश कैसे उत्पन्न होता है? शुद्धि की वृद्धि कैसे होती है? और पूर्णता (कैसे होती है)? यह सब दशायें हैं, ये सब दशायें व्यवहार में जाती हैं। चौदह गुणस्थान व्यवहार में जाते हैं। समझ में आया? अकेला अभेद का – निश्चय का कथन था ठीक, वह ठीक रहे.... परन्तु यह व्यवहार है या नहीं। इसकी समय की पर्याय है या नहीं? उस अभेदनिश्चय में तो पर्याय भी वहाँ तो नहीं आयी। समझ में आया?

एकरूप भगवान आत्मा निश्चयस्वरूप से एकरूप है। व्यवहार से उसे गिनो तो उसकी अवस्थाओं के प्रकार, निर्मल अवस्था के प्रकार, मलिन अवस्था के प्रकार और अन्य द्रव्य के प्रकार – यह सब इसे व्यवहार के प्रयत्न से भलीभाँति जानना चाहिए। आदर करने की बात का यहाँ प्रश्न नहीं है। ज्ञान करने योग्य है या नहीं? व्यवहारनय के विषय का ज्ञान करने योग्य है या नहीं?

मुमुक्षु – आदर करने योग्य नहीं तो फिर ज्ञान करने से क्या फायदा?

उत्तर – समझे बिना? खाये बिना, बेस्वाद कर दिया?

यह जाने तो सही कि यह भगवान आत्मा एकरूप चिदानन्द अभेद है तो इसमें संवर-निर्जरा और मोक्ष की दशा.... मोक्ष भले ही सादि-अनन्त (रहे) परन्तु एक भेद है न? भेद है उसे **जिण उत्तिया ववहार।** भगवान ने उसे व्यवहार कहा है तो उसे भलीभाँति जानना चाहिए। आस्रव, बन्ध, पुण्य-पाप को भगवान ने व्यवहार कहा है। भेद है न? मलिन है, उसे जानना चाहिए। वैसे ही इस आत्मा के अतिरिक्त दूसरे अनन्त आत्मायें हैं, उनके अतिरिक्त यह अनन्त कर्म है या नहीं? (वह) जो निश्चय में अभेद में हुआ, शुद्ध में दृष्टि (गयी), तब अशुद्ध है या नहीं? अशुद्ध का ज्ञान चाहिए या नहीं इसे? अशुद्ध है तो अशुद्ध में परचीज कर्म आदि निमित्त है या नहीं? वह परद्रव्य है, उसका ज्ञान करना चाहिए। समझ में आया?

यहाँ तो अपने अधिक विशिष्टता कहनी है कि **ववहारे जिण उत्तिया** – ऐसा यहाँ अधिक वजन है। इस श्लोक में यह नौ, सात या छह (परन्तु) भगवान ने व्यवहार से उन्हें कहा है। उसका अर्थ कि भगवान ने निश्चय से यह दूसरा कहा है। समझ में

आया ? वह है, इसलिए उसे निश्चय कहा है। है इसलिए निश्चय है, वह अलग... परन्तु जिसमें प्रयोजन सिद्ध करने के लिए आत्मा अभेद है, वह निश्चय है और यह सब भेद, उन्हें वीतराग ने व्यवहार कहा है। वीतराग परमेश्वर ने उन्हें व्यवहार कहा है; अतः उन्हें जानना चाहिए।

ववहारे जिण उत्तिया समझ में आया ? वजन यहाँ है। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने (कहे ऐसे) जगत् में छह द्रव्य हैं, अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति, आकाश, इन छह द्रव्यों का ज्ञान करना चाहिए। यह छह द्रव्य व्यवहार से जिन भगवान ने कहे हैं, क्योंकि इनमें निश्चय तो एकरूप आत्मा निकालना, उसे निश्चय कहते हैं। समझ में आया ? कहो, प्रवीणभाई ! व्यवहार खोटा है, अर्थात् आश्रय करने योग्य नहीं, त्रिकाल रहनेवाला नहीं, प्रयोजन में उसका आश्रय करने से प्रयोजन सिद्ध नहीं होता – ऐसी बात (कहनी है) परन्तु वस्तु नहीं ? समझ में आया या नहीं ? नव तत्त्व, छह द्रव्य और नौ तत्त्व – जीव, अजीव, आस्रव, पुण्य-पाप, संवर, निर्जरा, बन्ध, ये नौ हैं, उन्हें भगवान ने व्यवहार कहा है। नौ को भगवान ने व्यवहार कहा है, उसमें से एकरूप आत्मा का आश्रय करना, वह निश्चय है। आहा...हा... ! समझ में आया ? और सात तत्त्व, लो ! इन सात में वे पुण्य-पाप आस्रव में मिल जाते हैं। ये सातों कहे, उन्हें भगवान ने व्यवहार कहा है। नौ तत्त्व को या सात पदार्थ को अथवा सात तत्त्व को या नौ पदार्थ को व्यवहार कहा है, क्योंकि व्यवहार अर्थात् भेदरूप, अन्यरूप। समझ में आया ? ओ...हो... !

यह वस्तु है। योगसार है न ? अर्थात् आत्मा एक स्वभाव अन्तर अखण्ड है, उसका आश्रय करना निश्चय वस्तु है, वह प्रयोजन सिद्ध होने में वस्तु है परन्तु वह सिद्ध होना कब ? कहते हैं, दूसरी कोई चीज निषेध करने योग्य का ज्ञान किया है या नहीं ? तो कहते हैं सात का ज्ञान, नौ का ज्ञान, छह का ज्ञान भगवान ने उसे व्यवहार कहा है। समझ में आया ? इसलिए व्यवहार से भलीभाँति छह द्रव्य को जानना चाहिए। यह सर्वज्ञ के सिवाय अन्यत्र कहीं नहीं होते हैं। वीतराग परमेश्वर केवलज्ञानी के अतिरिक्त छह द्रव्य अन्य में कहीं नहीं होते हैं। तब वे छह द्रव्य और छह द्रव्य को जाननेवाली ज्ञान की एक समय की

पर्याय इतना आत्मा एक समय की सामर्थ्यवाला.... ऐसा अन्य दर्शन में कहीं नहीं होता। समझ में आया? और एक समय में छह द्रव्य ज्ञात हों, तथापि छह द्रव्य का निषेध, एक समय की पर्याय जाने उनका निषेध। आहा...हा...! समझ में आया?

एक समय में भगवान पूर्णानन्द प्रभु अभेद निश्चय का आश्रय, वह निश्चय कहा जाता है, वह सत्यदृष्टि कहलाती है। व्यवहार का ज्ञान करने योग्य है; व्यवहार आश्रय करने योग्य नहीं है। भेद का संवर, निर्जरा, मोक्ष का आस्रवतत्त्व, पुण्य -पाप का या अजीव का आश्रय करने योग्य नहीं है परन्तु उन्हें जानने योग्य है। कहो, समझ में आया?

इन्होंने (अर्थ करनेवाले ने) तो पहले कहा है कि साधक को पहले जानना चाहिए। शास्त्र कितने – ऐसा कहा सब। गोम्मटसार में कहा है देखो! कि **छह द्रव्य, पंचास्तिकाय.... अत्थाणं जिणवरावइट्ठाणं** भगवान द्वारा कथित उन्हें। देखो! **आणाए अहिगमेण** भगवान की आज्ञा से छह द्रव्य जानना। **अहिगमेण** और अपने ज्ञान से, युक्ति से जानना। एक-एक परमाणु में अनन्त गुण हैं। इन्होंने स्पष्ट कहा है। दूसरे कहें इसे समकित कहना। यह कहे कि व्यवहार है। यह बात सत्य है। समझ में आया?

इस श्लोक में आया या नहीं? **ववहारे जिण उत्तिया** छह द्रव्य की श्रद्धा, व्यवहार है; नव तत्त्व की श्रद्धा, वह व्यवहार है; नव तत्त्व और छह द्रव्य का ज्ञान, वह व्यवहार है, फिर उसके साथ लागू करना चाहिए न? उसमें है वह, उसका अर्थ कि भेदवाला है या नहीं? भेद है या नहीं? छह द्रव्य पंचास्तिकाय... समझ में आया? फिर इतने की स्वयं साधारण व्याख्या की है।

कहते हैं कि निश्चय से देखें तो भगवान पूरा निर्मलानन्द पर से पृथक् दिखता है, और निश्चय से देखें तो एक-एक रजकण भी पर के सम्बन्ध से रहित द्रव्य.... परमाणु पृथक् दिखता है। समझ में आया? पृथक् दिखता है का अर्थ कि अभेद की दृष्टि होने पर परमाणु भी पृथक् द्रव्य है – ऐसा इसे ज्ञान में आता है। समझ में आया? यह ३५ वीं गाथा (पूरी) हुई। अपने को यहाँ सार-सार लेना है न? पाठ के भाव में से... बाकी सब बहुत लिखा है।

प्रश्न – कितना ही तो मिलन बिना का।

उत्तर – इसलिए पूरा कहाँ पढ़ते हैं ?

मुमुक्षु – यह सब जानने का प्रयत्न न करे और भगवान को सिर पर धार ले तो ?

उत्तर - उसमें कौन भगवान चले ? उसका लेकर आये हैं यह – वहाँ ऐसा कहते हैं – 'ढींग घणि माथे कियो रे कौण गंजे नर खेत', परन्तु भगवान सिर पर किसलिए अलग ? सर्वज्ञ परमात्मा दूसरे देवों से, दूसरे गुरु से, दूसरे तत्त्वों से इस तत्त्व का स्वरूप सच्चा कहनेवाले हैं – ऐसा पृथक् क्यों किया ? हैं ? ये भिन्न क्यों कहलाये ? कि दूसरे की अपेक्षा इनका अलग.... दूसरे ऐसा कहते हैं, दूसरे भेद से कहते हैं, अकेले को कहते हैं। सात तत्त्वसहित, निश्चयसहित के व्यवहार को कहते हैं – ऐसे भगवान का ज्ञान मिलानवाला रहे बिना भगवान सिर पर धारे नहीं जा सकते। कौन मालिक ? तुझे ऐसा है कुछ ? भगवान अकेले धार तो वे छह द्रव्य में आते हैं – ऐसा कहते हैं, लो ! भगवान भी तूने यदि (धारे हों तो वे व्यवहार से हैं)। **जिण उत्तिया ववहारे** यह भगवान जगत् में हैं, देव-गुरु-शास्त्र हैं। उनका ज्ञान व्यवहार से ज्ञान है, निश्चय से नहीं। समझ में आया ?

निश्चय में तो स्व चैतन्यमूर्ति भगवान अखण्डानन्द प्रभु पूर्ण शुद्ध एकरूप चैतन्य है, उसका आश्रय करके सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, उसे यहाँ निश्चय कहा जाता है। निश्चय में कहीं सत्य फल आना चाहिए। व्यवहार में जानने का आता है, उसमें क्या ? राग आवे, उसमें कुछ सत्यफल नहीं आता। समझ में आया ? ऐसी बहुत न्याय से बात रखी है। भाषा कैसी कही ? यह छह द्रव्य का कथन भगवान ने कहा है, उसे भगवान ने व्यवहार कहा है, हाँ ! भगवान ने यह कहा और भगवान ने इसे व्यवहार कहा, हैं ? अन्य गड़बड़ करते हैं न ? भाई ! दूसरे.... इसमें से गोम्मटसार का अर्थ भी मिथ्या निकालते हैं। ऐसा होता है ? निकालते हैं न, पता है न। यह लिखा उसमें... यह तो भेदवाली बात है।

एकरूप भगवान आत्मा निर्विकल्प वस्तु, आत्मा निर्विकल्प है। समझ में आया ? ऐसे आत्मा का अन्तर आश्रय निर्विकल्प दृष्टि से करे, तब उसे निश्चय कहा जाता है। यह सब व्यवहार है, व्यवहार जानने योग्य है, उसका ज्ञान करने योग्य है, वहाँ खड़े रहने योग्य नहीं है।

☆ ★ ☆

सब पदार्थों में चेतनेवाला एक जीव ही है

सव्व अचेयण जाणि जिय, एक्क सचेयणु सारु।
जो जाणेविणु परम-मुणि, लहु पावइ भवपारु ॥३६॥

शेष अचेतन सर्व हैं, जीव सचेतन सार।
मुनिवर जिनको जानके, शीघ्र हुये भवपार॥ ३६॥

अन्वयार्थ – (सव्व अचेयण जाणि) पुद्गलादि सर्व पाँचों द्रव्यों को अचेतन या जड़ जानो **(एक्क जिय सचेयण सारू)** एक अकेला जीव ही सचेतन है, व सारभूत परम पदार्थ है **(परम मुणि जो जाणेविण लहु भवपारू पावइ)** जिस जीव तत्त्व को अनुभव करके परम मुनि शीघ्र ही संसार से पार हो जाते हैं।

☆ ★ ☆

सब पदार्थों में चेतनेवाला एक जीव ही है। लो निकाला इसमें से।

सव्व अचेयण जाणि जिय, एक्क सचेयणु सारु।
जो जाणेविणु परम-मुणि, लहु पावइ भवपारु ॥३६॥

भगवान सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमेश्वर कहते हैं कि हे जीव! **पुद्गल आदि सर्व पाँचों ही द्रव्यों को....** एक परमाणु धर्मास्ति-अधर्मास्ति, आकाश, काल – ये सब अचेतन हैं। समझ में आया? यह शरीर, अन्दर कर्म, यह वाणी, यह सब अचेतन है-जड़ है; इनमें चैतन्यभाव नहीं है। चैतन्यभाव सर्वज्ञ प्रभु आत्मा में है, जिसमें चैतन्यभाव है, वह सर्वज्ञस्वभावी आत्मा है। समझ में आया? **सव्व अचेयण जाणि** भगवान आत्मा के अतिरिक्त कर्म के रजकण, शरीर, वाणी, यह दाल, भात, सब्जी, मकान, सब जड़ अचेतन हैं। इनमें चैतन्य का अस्तित्व नहीं है। **और इनसे बने हुए पदार्थों को अचेतन अथवा जड़ जानो।**

एक्क जिय सचेयण सारु भगवान आत्मा सचेतन है। देखो, उस व्यवहार का ज्ञान कराया। अब, जिसमें चेतनपना भरा है, चेतनपना भरा है अर्थात् जिसमें ज्ञ-स्वभाव

भरा है, अर्थात् जिसने सर्वज्ञस्वभाव भरा है, वह एक ही यह आत्मा है। समझ में आया? यह क्या कहा? वे सब हैं, उन्हें जाननेवाला ज्ञान, पर्याय का है परन्तु उसे पूरा आत्मा जानने की ताकत जिसमें सर्वज्ञपद पड़ा है, वह सबको जानता है। वे (सब) अचेतन हैं परन्तु उन्हें जाने, वह ज्ञान की दशा है परन्तु वह ज्ञानदशा, ऐसी अनन्त ज्ञानदशा का चैतन्य पिण्ड अकेला आत्मा है, वह सचेतन, सचेतन सर्वज्ञ आत्मा है, उसे तू आत्मा जान।

दूसरा क्या लक्ष्य में आया कि – आत्मा के अतिरिक्त जो समस्त हैं, दूसरे सब सचेतन, अन्य आत्माएँ भले दूसरे हों परन्तु तेरे लिए सचेतन नहीं हैं। तेरे अतिरिक्त के सब यह चैतन्य उनमें कहीं नहीं है। समझ में आया? यह एक चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा, समस्त जीव को चैतन्यस्वरूप को देखो तो भी वह जीव जाननेवाला सर्वज्ञस्वभाव है – ऐसा इसे दृष्टि में आयेगा। सबमें ज्ञान नहीं है और सबका जिसे ज्ञान है – ऐसा आत्मा सर्वज्ञ स्वभावी है। क्या कहा? सबमें ज्ञान नहीं है... पाँच जड़, परमाणु, शरीर, यह तो सब मिट्टी, धूल है। इनमें सबमें – अनन्त परमाणु, अनन्त आत्मा की संख्या से अनन्त परमाणु (है).... असंख्य कालाणु इन सबमें ज्ञान नहीं है। तब इन सबको जाननेवाला है, वह चैतन्यस्वभावी, सर्वज्ञस्वभावी आत्मा है, उसे आत्मा जान – ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया? एक सचेतन.... **सारु** शब्द लिखा है न फिर? सारभूत परमपदार्थ भगवान आत्मा है। आहा...हा...! समझ में आया? यह तो भाई! योगसार है। स्वरूप की एकता करना, उसका सार स्वरूप क्या – उसकी बात है? समझ में आया?

भगवान आत्मा कहते हैं, कि जो इसमें चैतन्यस्वभाव, चैतन्यस्वभाव है, वह सार है। वापस.... वह सार है। समझ में आया? दूसरे में वह कुछ है नहीं। अनन्त परमाणु, पुद्गल जड़, मिट्टी, धूल, अनन्त गुणे पदार्थ एक जीव से जड़ बहुत-अनन्तगुने.... अनन्तगुने.... अनन्तगुने तीन काल के समय अनन्तगुने... यह सब जड़ है। समझ में आया? क्षेत्र, आकाश, सब जड़ है। बड़ा-बड़ा लम्बा क्षेत्र... काल ऐसा लम्बा, जड़ है। पुद्गल की संख्या अनन्त, वह सब जड़ है। ये सब जड़ हैं, अचेतन हैं, तब इन सब जड़ को, तीन काल के कालरूपी जड़ को और अनन्त आकाश ऐसे जड़ को जाननेवाला यह चैतन्य, वह सर्वज्ञ सारस्वरूप है। समझ में आया?

'**सव्व अचेयण जाणि**' देखो! '**जाणि**' लिया है न? '**सव्व अचेयण जाणि जिय एक्क सचेयण सारु**' आहा...हा...! आचार्यों के कथन हैं। पेट में अन्दर इतना भरा है न? '**सव्व अचेयण जाणि जिय एक्क सचेयण सारु**' इन सबको जान, यह भी नहीं परन्तु यह सचेतन सार, यह सार है। समझ में आया? एक भगवान जीव ही सचेतन है, जानने-देखनेवाला है। देखो! जीव रागवाला है या पुण्यवाला है या आस्रववाला है, वह जीव नहीं। समझ में आया? इन सबको जाननेवाला (है – ऐसा कहना), वह भी व्यवहार हो गया, भाई! आहा...हा...!

इस प्रकार सब अचेतन, काल, क्षेत्र, द्रव्य-अनन्त द्रव्य, अनन्त क्षेत्र, त्रिकाल काल, पुण्य-पाप, अचेतन सब भाव, सब अचेतन को जान और जाननेवाला एक चैतन्यसार है – ऐसा जान। समझ में आया? आहा...हा...! यह तो मुनियों की अन्दर बहुत मस्ती की वाणी है। थोड़े में बहुत भरा है परन्तु इसकी टीका नहीं मिलती। टीका होवे तब हो न! समझे न! '**सव्व अचेयण जाणि जिय एक्क सचेयण सारु**' आहा...हा...! एक जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... सार है। ऐसे आत्मा को जान तो तेरा कल्याण होगा, इसके अतिरिक्त तेरा कल्याण नहीं है।

जो जाणेविणि पमममुणि इस जीवतत्त्व का अनुभव करके... जानकर अर्थात् अनुभव करना। **जो जाणेविणि पमममुणि** इस भगवान आत्मा से अन्य अचेतन, इन्हें जान और जाननेवाले को सार जान, सार जान। अकेला सर्वज्ञस्वभावी भगवान आत्मा है। चैतन्यस्वभाव, चैतन्यस्वभाव.... जड़ में चैतन्य का अंश बिल्कुल नहीं है। तब यह चैतन्यस्वभाव परिपूर्ण स्वभाव से भरपूर चैतन्यसार, कहते हैं। **जाणेविण** आत्मा ज्ञानानन्द का अनुभव करके, हे आत्माओं! परम मुनि **लहु पावइ भवपारु** अल्प काल में सन्त, भव का पार पा जाते हैं। आहा...हा...!

जाणेविण इसका अनुभव करके.... भगवान आत्मा वस्तु है, उसे जानना। यह व्यवहार कहा, यह सार चैतन्य इसे जानना अर्थात् अनुभव करना.... इसके अनुभव द्वारा परम सन्त भव का पार पा गये हैं। संसार का अन्त लाने का, भगवान आत्मा के स्वरूप का अन्तर्मुख अनुभव करना, यही भव का पार लाने का उपाय है। कहो, समझ में आया?

इसलिए बीच में ऐसा भी कह दिया कि बीच में कुछ पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत के विकल्प आवें वे कहीं मुक्ति का उपाय नहीं है, भवपार का उपाय नहीं है। आहा...हा...! समझ में आया?

यह नजर से दिखता है न! आँखें उघाड़े तो दिखता है या उघाड़े बिना दिखता है? सोने के नरिया हुआ, कहे। लो! सबेरे आठ बजे... ए... देखो! सोने के नरिया हुआ। बिस्तर में एक गद्दा उसमें तीन कम्बल ओढ़े, आँख को चिपका लगे देखो! नरिया सोने का हुआ, सूरज उगा... ऐसा। किस प्रकार देखना? नजर से दिखता हो तो ठीक (तब तो) माने परन्तु आँख उघाड़े तो दिखे या आँख उघाड़े बिना? समझ में आया? आहा...हा...! यह भगवान चैतन्यसूर्य आत्मा है, यह देह में विराजमान आत्मा, यह चैतन्यसूर्य है। इसलिए चैतन्यसूर्य-सचेतन में दूसरा फिर अचेतनपना न जाने – ऐसा नहीं आता। ऐसा सर्वज्ञ भगवान आत्मा का अनुभव करके अल्प काल में मुनि, मोक्ष प्राप्त करते हैं।

इन्होंने दृष्टान्त दिया है। **जैसे शक्कर और अनाज एकत्रित करके नौ (प्रकार की) मिठाई बनायी जाती है....** ऐसा दृष्टान्त दिया है, है न? जैसे शक्कर को आहार के साथ मिलाकर नौ प्रकार की मिठाई बनावे उसी में नीचे है, भाई! ३६ गाथा चलती है उसके नीचे। एक शक्कर के साथ नौ (मिठाई) बनावे **तो भी उसमें शक्कर को देखनेवाला पुरुष शक्कर को अलग देखता है।** हमने तो नमक का दृष्टान्त दिया है, यह शक्कर का ठीक है। शक्कर डाल-डालकर नौ मिठाई बनावे, नौ मिठाई करे परन्तु शक्कर को देखनेवाला शक्कर... शक्कर... शक्कर देखता है, वह शक्कर ही देखता है। उसमें चने का आटा हो, गेहूँ का आटा हो, अमुक हो, वह नहीं। शक्कर... शक्कर... शक्कर... शक्कर... शक्कर। इसी प्रकार पूरी दुनिया में जहाँ देखे तो चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला.... वह मैं। ज्ञात हो जाये दूसरी वस्तु तो क्या? मैं तो जाननेवाला हूँ। जड़ का ज्ञान, संवर का ज्ञान, निर्जरा का ज्ञान, मोक्ष का ज्ञान, दूसरे जीव का ज्ञान, अजीव का (ज्ञान) परन्तु ज्ञान... ज्ञान वह मैं हूँ। समझ में आया? बातों को पकड़ना कठिन पड़ता है। मूल बात कभी सुनी नहीं, अनन्त काल से ऊपर का ऊपर चला गया है। मूल चीज क्या है? उसे पकड़ने का कभी प्रयत्न नहीं किया

है। ऐसे का ऐसा चला गया है मुट्ठी बाँधकर... कुछ धर्म करते हैं, सामायिक किया और प्रौषध किया, प्रतिक्रमण किया यात्रा कर आये.... क्या है ? धूल भी नहीं वहाँ, सुन न! भगवान आत्मा एक समय में सर्वज्ञस्वभावी आत्मा की दृष्टि और अनुभव न करे, तब तक उसे किञ्चित् धर्म नहीं होता। समझ में आया ? आहा...हा... !

फिर सब लम्बी-लम्बी बातें की हैं। फिर थोड़ा डाला है **वज्रवृषभनाराचसंहनन होना जरूरी है, उसके बिना....** ऐसा वीर्य प्रगट नहीं होता। फिर लकड़ी घुसाई है (विपरीतता) १५८ पृष्ठ पर है। यहाँ तो कहते हैं, इस भगवान आत्मा में.... देखो! बाह्य चारित्र तो निमित्तमात्र है। नीचे है १५८ में। यह दया, दान, व्रत, भक्ति तो बाह्य निमित्तमात्र है। **शुद्ध अनुभवरूप परम सामायिक अथवा यथाख्यातचारित्र उपादानकारण है।** भगवान आत्मा के आनन्दस्वभाव का अनुभव करना, वह मूल उपादान है। यह ३६ गाथा हुई। चलो।

☆ ★ ☆

व्यवहार का मोह त्यागना जरूरी है

जइ णिम्मलु अप्पा मुणहि, छंडिवि सहु ववहारु।
जिण-सामिउ एमइ भणइ, लहु पावइ भवपारु ॥३७॥

शुद्धातम यदि अनुभवो, तजकर सब व्यवहार।
जिन परमातम यह कहें, शीघ्र होय भवपार॥ ३७॥

अन्वयार्थ – (जिणसामिउ एहउ भणइ) जिनेन्द्र भगवान ऐसा कहते हैं **(जइ सहु ववहारूछंडवि णिम्मलु अप्पा मुणहि)** यदि तू सर्व व्यवहार छोड़कर निर्मल आत्मा का अनुभव करेगा **(लहु भवपारूपावहु)** तो शीघ्र भव से पार होगा।

☆ ★ ☆

३७। **व्यवहार का मोह त्यागना जरूरी है।** देखा ? वहाँ (३५ गाथा में) कहा था कि **ववहार उत्तिया** समझे न ? उसे जानना (ऐसा कहा), यहाँ छोड़ने की बात करते हैं।

जइ णिम्मलु अप्पा मुणहि, छंडिवि सहु ववहारु।
जिण-सामिउ एमइ भणइ, लहु पावइ भवपारु ॥३७॥

ऐसे शब्द बहुत आते हैं। शीघ्र... शीघ्र... शीघ्र... शीघ्र... मोक्ष... मोक्ष... मोक्ष... आहा...हा...! **जइ णिम्मलु अप्पा मुणहि** क्या कहते हैं? **जिनेन्द्र भगवान ऐसा कहते हैं....** जिनस्वामी ऐसा कहा, जिनस्वामी ऐसा कहते हैं। जिनेश्वर त्रिलोक के नाथ परमेश्वर तीर्थंकरदेव की वाणी में हुकम आया है। आहा...हा...! **जिणसामी एमइ भणई** यह तीन लोक के नाथ परमेश्वर समवसरण में ऐसा हुकम, आज्ञा करते थे। क्या?

जइ सहुववहारु छंडवि णिम्मलु अप्पामुणहि इस व्यवहार का ज्ञान करना – (ऐसा) जो हमने कहा, व्यवहार है उसे जानना, परन्तु उसकी दृष्टि छोड़। व्यवहार को छोड़ और एक आत्मा का आश्रय कर – ऐसा जिन स्वामी का हुकम है। समझ में आया? यह सब अभी विवाद उठा है। वे कहते हैं व्यवहार से होता है। अरे! सुन न व्यवहार छोड़ने की भगवान की आज्ञा है। अधिक लोगों की संख्या है न चीटिंयों जैसी बड़ी। आहा...हा...!

जिणसामी एमइ भणई आहा...हा...! यह वीतरागरूपी सिंह, वीतराग के सिंह की दहाड़ जैसी वाणी आयी है कि सिंहनाद आया, देखो! कहते हैं। **जइ सहुववहारु छंडवि** ऐसा **जई** वापस, हाँ! **जई** अर्थात् यदि तू सर्व व्यवहार को छोड़ेगा – ऐसा कहते हैं। व्यवहार है, रागादि, पुण्यादि, निमित्तादि हो परन्तु जब **तू व्यवहार को छोड़कर निर्मल आत्मा का अनुभव करेगा....** भगवान आत्मा चैतन्य प्रभु का अन्तर में एकाग्रता का आत्म-अनुभव करेगा... यदि व्यवहार छोड़ेगा, अनुभव करेगा तो मुक्ति होगी। जब व्यवहार छोड़ेगा तब। तू कहता है व्यवहार... कुछ व्यवहार अरे! सुन न! समझ में आया?

तो शीघ्र भव से पार हो जायेगा। भगवान की आज्ञा है, भगवान ने आज्ञा का उपदेश कहा, निर्मल आत्मा का अनुभव करो। **यह अनुभव तभी होता है जब सर्व पर के आश्रयरूप व्यवहार का मोह त्यागा जाए।** लो, यह ठीक है। **पर पदार्थ का परमाणुमात्र भी हितकारी नहीं है। व्यवहार धर्म, व्यवहार सम्यग्दर्शन-ज्ञान**

-चारित्र का जितना विषय है, वह सब छोड़ने योग्य है। समझ में आया? इस गाथा का नीचे अर्थ है। व्यवहारधर्म – दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वह व्यवहार धर्म-पुण्य है। व्यवहार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र... व्यवहार सम्यग्दर्शन (अर्थात्) नव तत्त्व की श्रद्धा, भेदवाली श्रद्धा, भगवान की श्रद्धा, व्यवहार सम्यग्दर्शन; शास्त्र का ज्ञान व्यवहार ज्ञान; पंच महाव्रत का परिणाम व्यवहारचारित्र और इनका जो विषय, वह सब त्यागने योग्य है। समझ में आया? है न? पाठ में है या नहीं?

सहुववहारु छंडवि सर्व व्यवहार, ऐसा इसमें शब्द पड़ा है न? सर्व व्यवहार में तो बहुत सूक्ष्म बात ली है। परवस्तु छूटी, राग छोड़। समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का विकल्प छोड़, यह गुण-गुणी के भेद का विकल्प भी छोड़... यह सब व्यवहार है। **जइ** और **सहु** दो शब्द पड़े हैं न? अद्भुत लिखा है, हाँ! आहा...हा...! **सम्यग्दृष्टि चाहे गृहस्थ हो या साधु हो, केवल अपने शुद्धात्मा को ही अपना हितकारी जानता है। शेष सर्व को त्यागनेयोग्य परिग्रह जानता है।** कहो, इसमें समझ में आया? यह परिग्रह है न?

सर्व कार्य को व्यवहारधर्म जानकर छोड़ने योग्य समझता है क्योंकि व्यवहार के साथ राग करना, कर्मबन्ध का कारण है। ठीक! फिर, देखो! वहाँ तक लिया... **सिद्धों का ध्यान करता है तो भी सिद्धों को पर मानकर उनका ध्यान भी छोड़ने योग्य है - ऐसा जानता है।** सर्व शब्द पड़ा है न? भगवान सिद्ध समान हूँ, सिद्ध भगवान जैसा (हूँ) यह भी एक विकल्प है। हैं?

मुमुक्षु – बहुत जानने की गाथा है।

उत्तर – बहुत पकड़ने की गाथा है। सर्व शब्द पड़ा है, इसलिए फिर उसका स्पष्टीकरण होना चाहिए न? जितने व्यवहार के भेद वे सब छोड़ने योग्य हैं, उनका – व्यवहार का कोई अंश आश्रय करने योग्य नहीं है। फिर निमित्त हो, दया, दान के परिणाम हों, एक समय की अवस्थारूप भेद हो, गुण-गुणी के भेद का विकल्प हो, कोई भी विचार आदि हो, वे सब छोड़ने योग्य हैं। तब अन्तर आत्मा की दृष्टि और अनुभव हो सकेगा – ऐसा भगवान का फरमान है। इस आज्ञा से विरुद्ध माननेवाले को भगवान की आज्ञा की

श्रद्धा नहीं है। भगवान के उपदेश की श्रद्धा नहीं है। कहो, समझ में आया इसमें? वैसे तो कहे, हे भगवान! तुमने भी यह कहा क्या यह तो तुम्हें पता नहीं। उन्होंने यह कहा है कि व्यवहार छोड़कर निश्चय आदर! – यह उनकी आज्ञा और उपदेश है। बारह अंग और चौदह पूर्व के कथन का सार – मक्खन यह है। बारह अंग और नौ पूर्व का अन्तरंग सार यह है।

भगवान आत्मा एक समय में अनन्त आनन्द का कन्द प्रभु है, उसका अन्तर आश्रय करके अनुभव कर। जितना व्यवहार है, जब तक अन्दर व्यवहार का विकल्प रहेगा, तब तक अन्तर अनुभव नहीं हो सकेगा। ऐसी भगवान की आज्ञा और उपदेश है। जब तक तेरा (लक्ष्य) भेद पर, राग पर, निमित्त पर इत्यादि गुण-गुणी के विचार पर लक्ष्य रहेगा, तब तक भगवान की आज्ञा है, और वैसा स्वरूप है। भगवान की आज्ञा है और ऐसा वह स्वरूप है कि जब तक ऐसे व्यवहार का लक्ष्य रहेगा, तब तक निश्चय में – अन्तर में नहीं जाया जा सकेगा – ऐसा उसका स्वरूप है। ऐसी भगवान की आज्ञा है। कितना कहा? कितना कहा? अनन्त गुना पक्का है यह। ठीक, यह पुराने लोग इसलिए जरा अन्दर डाला करते हैं। देखो,

सिद्धों का ध्यान करता है तो भी सिद्धों को पर मान कर उनके ध्यान को भी त्यागने योग्य जानता है, क्योंकि वहाँ भी शुभ का अंश है। (और तो क्या) गुणगुणी भेद का विचार भी परिग्रह है, व्यवहार है, त्यागने योग्य है, क्योंकि इस विचार में विकल्प है, जहाँ विकल्प है, वहाँ शुद्धभाव नहीं। आहा...हा...! **यद्यपि इस विचार का आलम्बन दूसरे शुक्लध्यान तक है तथापि सम्यग्दृष्टि इस आलम्बन को भी त्यागने योग्य जानता है।** ठीक किया है। आता है न? अवलम्बन आवे, बयालीस भेद आदि परन्तु वह त्यागने योग्य है। अन्तर में यह आदरने योग्य है – ऐसा कहते हैं। भेद पड़ा इसलिए वह ध्यान है – ऐसा नहीं। अवलम्बन छुड़ाया, निमित्त छोड़ने योग्य है, अन्दर में स्वभाव तरफ की अभेदता में, एकरूपता में जाना वह आज्ञा है, और वस्तु भी ऐसी है। ऐसे भेद से किसी प्रकार अन्तर पकड़ा नहीं जा सकेगा। यह चीज ऐसी है, इसलिए भगवान की आज्ञा ऐसी है कि अन्तर स्वभाव का आश्रय करके

अनुभव करो, यह अनुभव एक ही मोक्ष का मार्ग है। कहो, समझ में आया? फिर दूसरा थोड़ा सा डाला है।

सम्यक्दृष्टि के देव-गुरु-शास्त्र, घर, उपवन सब ही एक अपना ही शुद्धात्मा है.... क्या कहा? इस धर्मी जीव का देव आत्मा... लो! क्या? धर्मी जीव का गुरु यह आत्मा... उसका शास्त्र भी यह आत्मा... देव-गुरु-शास्त्र पर है न? व्यवहार से भिन्न किया। पर है अवश्य न? यह घर आत्मा.... इस आत्मा का घर अन्दर आत्मा... यह घर-बर कैसा? शरीर, वाणी, मन तो कहीं रह गये, वे तो धूल हैं। बाहर के मिट्टी के घर तो कहीं रह गये, वे तो जड़ के घर थे। यह मांस का पुतला... यह कहाँ आत्मा का घर है? भगवान सच्चिदानन्द प्रभु 'सिद्ध समान सदा पद मेरो' ऐसा आत्मा, उसका घर अन्दर आत्मा है, आहा...हा...! ऐसा भगवान का फरमान है। कहो, यह तुम्हारे २२-२२ मंजिल के मकान, यह घर नहीं, कहते है। हैरान होकर चला जायेगा। हैं? आहा...हा...!

उपवन... आहा...हा...! कहते हैं कि लोग घूमने जाते हैं न? उपवन, वन में... धर्मी का उपवन कौन? आत्मा उपवन है। घूमकर वहाँ हृदय जाता है, आहा...हा...! बाग-बगीचे में घूमते हैं न? मुम्बई में क्या कहते हैं? हैंगिंग गार्डन.... हवा इतनी ठण्डी थी, हम गये तब। वहाँ तो सर्दी हो गयी थी। यह कहते हैं कि वहाँ क्या है? हमें तो प्रातः घूमने जाना है। धूल में भी नहीं, कहते हैं। आत्मा उपवन है। आहा...हा...! समझ में आया?

सब ही एक अपना ही शुद्धात्मा है.... शुद्धात्मा, हाँ! अशुद्ध पर्याय, रागादि, निमित्त आदि सब छोड़ने योग्य है। **वही आसन है....** देखो, यह आसन लगाओ, अच्छा आसन ढूँढकर... यह आसन आत्मा है, भाई! अच्छा आसन लगाओ। किसका? जड़ का? वह तो मिट्टी है अन्दर आसन ज्ञानानन्द भगवान को दृष्टि में लेना, वहाँ स्थिर होना, वह उसका आसन है। 'आसन मारी सूरत दृगधारी, देख्या अलख दे दार' अन्दर में आसन लगाकर, अन्दर में असंख्य प्रदेश में स्थिर हो, वह इसका आसन है। शरीर-फरीर ऐसा करना, ऐसा करना, धूल भी नहीं... वह तो जड़ है। ऐसा रखो (ऐसा कहते हैं)। वह चाहे जैसे रहे, वह तो जड़ है।

वही शिला है.... अच्छी शिला ढूँढकर जंगल में जाकर ध्यान करना, हाँ! पत्थर

की शिला बड़ी लम्बी हो, ऊँची इतनी हो तो फिर ऐसे गिर जाये तो ? थोड़ी ऐसी लम्बी हो, थोड़ी ऐसी लम्बी हो तो गिर जाये तो दिक्कत नहीं आवे, इतना होवे तो फिर ऐसा करने से ऐसा हो जाये तो ? लम्बी शिला ऐसी होती है न ? शिला आत्मा है, कहते हैं।

वही पर्वत की गुफा है.... वह व्यवहार छोड़ने को कहा है न ? ऐसा व्यवहार छोड़ने को कहा, इसलिए यह सब व्यवहार नहीं, ऐसा कहते हैं। मूल तो इसके साथ में सम्बन्ध है भाई! वह व्यवहार छोड़ने को कहा है न ? वह सब व्यवहार है, ऐसा कहते हैं। **वही सिंहासन है, वही शय्या है, ऐसा असंगभाव और शुद्ध श्रद्धान जिसे होता है वही सम्यग्दृष्टि ज्ञानी है....** कहो ? वही जीव **नौका पर आरूढ़ हुआ है।** आत्मा के अन्तर एकाग्रता और अनुभव की नौका पर आरूढ़ है। वह संसार सागर से पार करनेवाली है। आहा...हा... !

व्यवहार के मोह से कर्म का क्षय नहीं होता। जो अहंकार करता है कि मैं मुनि.... हूँ, मैं पंच महाव्रतधारी हूँ, यह सब अहंकार मिथ्यात्व है। **मैं तपस्वी हूँ, वह व्यवहार का मोही मोक्षमार्गी नहीं है।** व्यवहार की सावधानीवाला मोक्षमार्गी नहीं है। निश्चय की सावधानीवाला मोक्षमार्गी है – ऐसा कहते हैं। पाठ में है न ? **जइ सहुववहारु छंडवि** अकेला भगवान आत्मा.... **अप्पामुणहि** है न ? आत्मा ही जाने, आत्मा को ही सब जाने, ऐसा। **मुनियों का नग्न वेश और श्रावक को वस्त्रसहित का वेश निमित्तकारण है तो भी मोक्ष का मार्ग तो एक रत्नत्रय धर्म ही है।** दूसरा मोक्षमार्ग नहीं है। कहो, समझ में आया ? लो, यह ३७ गाथा (पूरी) हुई।

☆ ★ ☆

जीव-अजीव का भेद जानो

जीवाजीवहँ भेउ, जो जाणइ तिं जाणियउ।
मोक्खहँ कारण एउ, भणइ जोइ जोइहिँ भणिउँ॥३८॥

जीव अजीव के भेद का, ज्ञान ही सम्यक् ज्ञान।
हे योगी! योगी कहें, मोक्ष हेतु यह जान॥ ३८॥

अन्वयार्थ – **(जोई)** हे योगी! **(जोइहिं भणिउ)** योगियों ने कहा है **(जीवाजीवाहँ भेउ जो जाउइ)** जो कोई जीव तथा अजीव का भेद जानता है **(तिं मोक्खहँ कारण जाणियउ)** उसी ने मोक्ष का मार्ग जाना है। **(एउ भणइ)** ऐसा कहा गया है।

☆ ★ ☆

३८। **जीव अजीव का भेद....** देखो! अब वापस संक्षिप्त में लाये, भेदज्ञान। एक ओर अजीव और एक ओर जीव, दोनों का पृथक् ज्ञान कर।

जीवाजीवहँ भेउ, जो जाणइ तिं जाणियउ।
मोक्खहँ कारण एउ, भणइ जोइ जोइहिँ भणिउँ॥३८॥

इसमें सोरठा डाले, दूसरे में क्या था? वैसी गाथा नहीं डाली। वापस यहाँ डाला, सोरठा डाला है? हैं? फर्क होगा, परन्तु दूसरे में कहीं लिखा नहीं।

जीवाजीवहँ भेउ, जो जाणइ तिं जाणियउ।
मोक्खहँ कारण एउ, भणइ जोइ जोइहिँ भणिउँ॥३८॥

हे धर्मी... **योगियों ने....** तीर्थंकरों ने, सन्तों ने, केवलियों ने जीव-अजीव का भेद जान (– ऐसा कहा है)। जीव और अजीव का भेद जानना – ऐसा भगवान ने कहा है। दो में लाये अब, नौ में और सात में से निकालकर दो। एक ओर व्यवहार तथा एक ओर निश्चय। एक ओर अजीव तथा एक ओर जीव। समझ में आया?

जो कोई जीव तथा अजीव का भेद जानता है.... तिं मोक्खहँ कारण जाणियउ – उसने ही मोक्ष का मार्ग जाना है... जीव अर्थात् ज्ञायकस्वभाव अभेद वह जीव, बाकी सब अजीव। समझ में आया? यह जीव वह दूसरा जीव नहीं, इस जीव से सब जड़ वे (जीव) नहीं। राग, पुण्य, वह जीव नहीं। यह एक समय का भेदभाव भी वास्तव में अखण्ड जीव नहीं।

जीव तथा अजीव का भेद जानता है.... भगवान आत्मा ज्ञायकभावरूप सर्वज्ञस्वभावी पूरा जीव और इसके अतिरिक्त सब जीव का सम्पूर्ण स्वरूप नहीं। समझ में आया? इस अपेक्षा से सबको अजीव कहा जाता है। यह व्यवहार भी अजीव!

आहा...हा... ! दया, दान, भक्ति, व्रत, तप के परिणाम वे अजीव... एक समय की पर्याय भी पूरा जीव नहीं। व्यवहार से जीव वह भी निश्चय से अनात्मा। समझ में आया ? ऐसा जीव-अजीव का भेदज्ञान उसे मोक्ष का कारण जान। जान, ऐसा भगवान ने कहा है। देखा ? है न ? **एउ भणई** ऐसा भगवान ने कहा है। ऊपर आ गया सब, भगवान तीर्थंकर ऐसा कहते हैं। संक्षिप्त शब्द में वह शब्द साथ नहीं (लिया होगा) समझ में आया ?

बन्ध और मोक्ष, दो हुए। बन्ध और मोक्ष, बन्ध में सम्बन्ध अजीव का है, मोक्ष का सम्बन्ध यहाँ स्वभाव के साथ है। इन दोनों को इसे जानना चाहिए। दो का ज्ञान भलीभाँति करना चाहिए। यह भेदज्ञान की प्रधानता से बात है। समझ में आया ? इसलिए जिसे संसार, राग, बन्ध, वह पर है और आत्मा ज्ञायक स्व है – उसका जहाँ भेदज्ञान होता है, उसे ही मुक्ति का कारण होता है, दूसरे को मुक्ति का कारण नहीं होता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

मुनिदशा में भावलिङ्ग-द्रव्यलिङ्ग का सुमेल

भाई ! साधु किसे कहा जाता है ? आत्मज्ञानसहित तीन कषाय चौकड़ी का अभाव जिनके अन्तर में परिणमित हुआ है, जिनकी दशा को अतीन्द्रिय आनन्द के प्रचुर स्वसम्वेदन की मुहर-छाप लगी है, बाह्य में जिनके वस्त्र का टुकड़ा भी न हो - ऐसी निर्विकार नग्नदशा हो, वे ही 'साहूणं' पद में आते हैं। उनके सिवा जो वस्त्र-पात्रधारी तथा अन्य परिग्रहवन्त हैं, उन्हें वीतरागता के मार्ग में साधु ही नहीं कहा जा सकता।

भावरहित अकेला द्रव्यलिङ्ग हो, वह सच्चा साधु नहीं कहलाता। जहाँ अन्तर में आनन्द का ज्वार आया है, ऐसा भावलिङ्ग-भावमुनिपना प्रगट हुआ है, वहाँ उसके साथ द्रव्यलिङ्ग होता ही है; बाह्य नग्नदशा न होकर, वस्त्रसहित हो, उसे भावलिङ्ग प्रगट हो - ऐसा कभी नहीं हो सकता तथा वस्त्ररहित नग्नदशारूप द्रव्यलिङ्ग है तो उससे भावलिङ्ग प्रगट होगा - ऐसा भी नहीं है। *— पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी*